



## कला, सौंदर्य एवं साहित्य के परिप्रेक्ष्य में राजेन्द्र यादव का समीक्षा चिन्तन

शोध पत्र-हिन्दी

\* डॉ. कृष्णबीर सिंह

अशोक वाजपेयी यह मानते हैं कि कहानी एक अग्रगामी विधा है तथापि 'एकाध बड़े आलोचकों के कहानी से आरम्भिक अनुयायि के अपवाद को छोड़ दें तो हिन्दी का कोई बड़ा आलोचक ऐसा नहीं है, जिसकी उपलब्धि और कीर्ति का मूलाधार कहानी की आलोचना हो।'<sup>11</sup> किन्तु यदि हम राजेन्द्र यादव के आलोचना संसार का विश्लेषण करें तो हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि उन्होंने न केवल कहानी आलोचना को प्रत्युत् साहित्य समीक्षा को नये आयाम दिये हैं। कहानी पर उन्होंने न केवल कहानी आलोचना को प्रत्युत् साहित्य समीक्षा को नये आयाम दिये हैं। यहाँ हम राजेन्द्र यादव की समीक्षा दृष्टिके (कहानी समीक्षा को छोड़कर) विविध आयामों पर विचार करेंगे। राजेन्द्र यादव नयी कहानी के एक महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट कहानीकार हैं तो एक जागरूक एवं सजग आलोचक भी। उनका अध्ययन क्षेत्र विशाल एवं व्यापक है। 'उन्होंने अपने समकालीन रचनामूल्यों को उनके सही परिप्रेक्ष्य में देखने-परखने की कोशिश की है। अपने समकालीन रचनाकारों की तुलना में राजेन्द्र यादव ने अधिक परिष्कृत और अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म आलोचना को जन्म दिया है। वस्तु की दृष्टि से देखें तो...यादव के निर्वाह में यथार्थवादी संस्पर्श की कमी भले ही हो, वह अधिक सूक्ष्म, परिष्कृत, कलात्मक है। कला के प्रति विश्वासघात उन्होंने नहीं किया।'<sup>12</sup>

**कला-सम्बन्धी अवधारणा :** राजेन्द्र यादव कला, उसकी समस्याओं और उसके संकटों के प्रति पूर्ण सचेत है इसलिए उनकी कहानियों तथा उनके उपन्यासों में कलाकार तथा रचनाकार पात्रों की संख्या पर्याप्त है। कला के प्रति उनका दृष्टिकोण समाज अथवा जीवन सापेक्ष है। वे कहते हैं, "कला कला के लिए हो या जीवन के लिए मैं समझता हूँ कि कला का मूल्यांकन कला के अपने मानदण्डों द्वारा हो ही नहीं सकता।'<sup>13</sup> इसका कारण यह है कि कला सर्जना, कलाकार की मानस प्रक्रिया में ढलकर रूप लेती, इस संसार के समानान्तर स्वतन्त्र सृष्टि ही हो तो है...स्वतंत्र-सृष्टि, अर्थात् निर्माण और संघटन के अपने नियमों, परम्पराओं से प्रेरित परिचालित...कलाकार उसके लिए मिट्टी भले ही इस वस्तु संसार से लेता हो, रूप उसका वह अपने ही स्वप्नों, स्मृतियों, आवश्यकताओं दबावों, कुण्ठाओं और दृष्टिके अनुरूप होता है।'<sup>14</sup>

वे कला को जीवन से निरपेक्ष रहने वाली वस्तु नहीं मानते तभी कहते हैं, "कला के मानदण्ड कहीं न कहीं जीवन के संदर्भों से ही जुड़े होते हैं। इसीलिए समय-समय पर इन्हें जीवन के समानान्तर रखकर देख लेना दोनों को समझने में सहायक होता है। कला को अभिव्यक्ति देने का माध्यम कलाकार है और वह सब कुछ होते हुए भी समय और समाज के प्रभावों को नकार नहीं सकता, उन्हीं के कारण उसकी अभिव्यक्ति और दृष्टि में परिवर्तन और प्रयोग होते हैं।'<sup>15</sup> इसका तात्पर्य यह है कि राजेन्द्र यादव जीवन के माध्यम से कला और कला के माध्यम से जीवन को समझने पर बल देते हैं क्योंकि दोनों को अलग नहीं किया जा सकता। कला के उद्देश्य क्या है? इस प्रश्न के संदर्भ में राजेन्द्र यादव के

अनुसार 'कोई भी महत्वपूर्ण कृति कहीं न कहीं परम्परागत जीवन दृष्टि की जड़ता और कलारूप के रचाव को तोड़ती है। यह तोड़ना ही उसे महत्वपूर्ण बना देता है और वहीं से कलाकार की यात्रा शुरू होती है।'<sup>16</sup> वे अपनी कला को जीवन की प्रगति के साधन के रूप में ही स्वीकार करते हैं इसीलिए वे कहते हैं, "कलाकार तमाम हवाई शब्दों को पकड़ता या अनाम ऊँचाइयों में खोया एरियल मात्र नहीं, एक जिम्मेदार सामाजिक...मानव आत्मा का डिटेक्टिव नहीं इंजीनियर। एक उज्ज्वल भविष्य।'<sup>17</sup> अर्थात् कला व्यवस्था को रेखांकित करने साकार करने या सक्रिय माध्यम और हथियार है। राजेन्द्र यादव की दृष्टि में कलाकार की प्रतिबद्धता तथा आस्था अपनी कला और अपने प्रति होते हुए भी कलाकार सामाजिक, राजनीतिक तथा वैचारिक उत्तरदायित्व से जुड़ा हुआ है। उनकी दृष्टि में 'कला एक अनुभव है और उसके माध्यम से हम उस अनुभव को हिस्सेदार बनाते हैं, लेकिन अभिव्यक्ति तो अनुभूति के अन्तिम सिरे पर आकर रूप लेना शुरू करती है।'<sup>18</sup> इसका अर्थ यही है कि जब कलाकार किसी अनुभव को जी लेता है और उस अनुभव से स्वयं गुजर लेता है तब कला अपना आकार ग्रहण करना प्रारम्भ करती है क्योंकि 'कलाकार के लिए अपने अनुभवों में पुनः लौट जाना, देखा और पढ़ना उनके लिए एक तरह से पवित्र और प्रेरणात्मक क्षण होते हैं। अतः इस उदात्त अनुभूति के बाद वह अपनी कला का निर्माण करता है।'<sup>19</sup>

अपनी इसी धारणा को परिपुष्ट करते हुए राजेन्द्र यादव कहते हैं, "वास्तविकता को अपनी संवेदना का अंग बनाने की तानव और संघर्ष-भरी प्रक्रिया की कथा के रूप में ही कला आत्मकथा हो सकती है, जीवन के यथार्थ को भरपूर जीने, यानी बाहरी वास्तविकता को अपने भीतर से गुजरते हुए, बदलते और बिखरते बनते रूप लेते हुए देख सकने की तटस्थता की कला की पहली और मौलिक शर्त है।'<sup>20</sup> इस कथन से यह ध्वनित होता है कि हर कला का रूप कहीं न कहीं कलाकार की आत्म कथा होती है। इसका गूढार्थ यह है कि हर कलाकार अपने अनुभव को अपना बनाता हुआ उसका अतिक्रमण करता है तथा अपने अनुभव को और अपने अनुभवों से यथार्थ को और यथार्थ से जोड़ता चलता है। 'कला का लक्ष्य ही पुरानी अभिरुचि या संस्कारों को तृप्ति देना और नवीन संस्कारों का निर्माण करना है। एक कलाकार में एक साथ या एक ही पीढ़ी के दो विभिन्न कलाकारों में ये दोनों प्रवृत्तियाँ अलग अलग प्रतिफलित होती हैं।'<sup>21</sup>

राजेन्द्र यादव यह मानते हैं कि "सौन्दर्यवृत्ति ही कला की जननी है।'<sup>22</sup> यहाँ वे ब्रुचे के अभिव्यञ्जनावाद के समर्थक प्रतीत होते हैं। वे कला और नैतिकता को दो भिन्न-भिन्न और विरोधी वस्तुएँ मानते हैं, क्योंकि नैतिकता तो समाज में स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को नियंत्रित परिचालित करने वाले स्वीकृत नियमों का ही नाम है जबकि फ्रायड के अनुसार स्त्री पुरुष के सम्बन्ध, आकर्षण की उन्मुक्त अभिव्यक्ति की लालसा कला के विभिन्न रूपों में आती है। 'जिस मूल सौन्दर्य भावना को नैतिकता कुचलती है, कला उसी की मुक्ति का झण्डा लेकर आती है। अतः यादव ने स्वीकार किया है कि कलाकार जो विचार,

विश्वास और संस्कारों की रूढ़ियों की कालिख से मानव मन को साफ करके उसे हर प्रकार के विद्रोह का विश्वास और साहस देता है, वह रूढ़ियों का दास कैसे होकर रहेगा, क्योंकि नैतिकता की ये रूढ़ियाँ मनुष्य के विकास को बाँध देती हैं।<sup>113</sup> कला जिन्दगी को समझने का माध्यम है, किन्तु 'कला को अगर जिन्दगी को समझने के माध्यम के रूप में इस्तेमाल करना है तो सबसे पहली शर्त यही है कि वह प्रामाणिक हो, विश्वसनीय हो। माध्यम को वसूल करने से पहले उसे समझने की जरूरत है।'<sup>114</sup>

इसका सीधा सा अर्थ यही है कि परिवेश की वास्तविकता को सहानुभूति से समझे बिना कला को भी नहीं समझा जा सकता। अतः कलाकार के लिए यह आवश्यक है कि वह परिवेश की वास्तविकता को पूरी तन्मयता के साथ समझे तभी उसकी कला में उभरने वाली जिन्दगी एक संचार बनकर उभरेगी। 'वह बदलते हुए समय में सम्बन्धों का, आदमी-आदमी को ढालने वाले संदर्भों का अन्वेषण है। हम कथा साहित्य द्वारा ही आदमी आदमी, आदमी और समाज व रिश्तों को ज्यादा गहराई से समझ सकते हैं।'<sup>115</sup>

वे लेखक के जीवन व्यक्तित्व को और कला को अभिन्न मानते हैं। तभी वे कहते हैं, 'कलाकार का व्यक्तित्व, उसका परिचय, उसका विश्वास और उसकी प्रतिबद्धता - सभी कुछ कला होती है। जो कुछ वहाँ नहीं है, उसका महत्व और मूल्य क्या हो और क्यों हो?'<sup>116</sup> राजेन्द्र यादव कलाकार के लिए यह आवश्यक मानते हैं कि वह अपने समय की तथा इतिहास की साहित्य विधाओं से अपने संस्कार ग्रहण करे। साथ ही युगाबोध को समग्रता में आत्मसात करने के लिए यह अनिवार्य है कि कलाकार अपनी अधिकाधिक समकालीन विधाओं का संस्कार ग्रहण करे।<sup>117</sup>

**रचनाप्रक्रिया सम्बन्धी अवधारणा :** राजेन्द्र यादव एक सचेत रचनाकार हैं, जिन्हें कथा साहित्य के क्षेत्र में अज्ञेय और यशपाल पसन्द हैं। पाश्चात्य लेखकों में चेखव, ज्विग, जॉर्ज और माम उनके प्रिय लेखक रहे हैं जो उनके रचनाकर्म को प्रभावित करते हैं। यादव के अनुसार, 'प्रोत्साहन और प्रेरणा देने वालों में स्वर्गीय श्री आर. सहगल, श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, श्री सं. ही. वात्स्यायन, और नयी चेतना के उत्साही साथी प्रमुख रहे हैं।'<sup>118</sup> इसके साथ ही वे अपने पाठकों तथा मित्रों के प्रति बहुत कृतज्ञ अनुभव करते हैं। पाठकों के स्नेहपूर्ण सुझावों और बढ़ावों से उन्हें हमेशा ही सधने की शिक्षा मिलती रही है, जिससे यादव और अधिक सतर्कता से अपनी रचना प्रक्रिया को समृद्ध करते हैं। छोटे बड़े सबकी बातें सुनना तथा दूसरों की रचनाएँ पुस्तकें पढ़ना उनके लिए सबसे अधिक प्रेरणास्पद सिद्ध हुए हैं। उनके अनुसार 'मुझे लगता है हर आदमी दूसरों के कहे लिखे के बहाने ही अपने अनुभव का पुनः सृजन करता है।'<sup>119</sup>

राजेन्द्र यादव की रचना प्रक्रिया पर उनके लेखक व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव है। वे स्वयं कहते हैं, 'स्मृतियों में रहना, स्वप्नों में जीना मुझे बेहद प्रिय है-वह न होता तो लेखक बन सकना भी सम्भव नहीं था।...लेखक के साथ मेरा रिश्ता निहायत व्यक्तित्व और आत्मीय है और वह वहीं तक रहेगा, हर क्षण यह दिखाते रहना, क्यों जरूरी हो?'<sup>119</sup> वे यह कहना चाहते हैं कि अपने लेखन में वे तटस्थ बने रहना चाहते हैं। उनकी पहली महत्वपूर्ण कहानी 'खेल खिलौने' को लिखते समय उन्होंने जिन बिम्बों को जताया था वे इस प्रकार थे, 'सबसे अधिक याद है वह अंधेरा कमरा, पास सोया मित्र और बदबूदार गली, जिसके फर्श से कुछ ऊँचा मेरा मकान था। कभी कभी नाक पर रूमाल रखना पड़ता था। इसके बीच सुन्दर सिरजने की नाजुक खुशी।'<sup>120</sup> उसके बाद उन्होंने 'सारा आकाश' उपन्यास की रचना की। इन रचनाओं के सृजन की स्मृतियों के साथ साथ अपने परिवेश की समझने, आस पास के संदर्भ खोजने की कोशिश उनमें बहुत साफ दिखायी देती

है। वे परिवेश के साथ साथ अपना आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करते हैं तथा हर लेखक के लिए इसे जरूरी मानते हैं। राजेन्द्र यादव व्यक्ति और परिवेश की संवेदना में रचना के सूत्र खोजते हैं। उनकी यह भी मान्यता है कि हर आइडिया या विचार जो किसी रचना का आधार बनता है, वह विचार कहीं विशेष परिस्थिति युग स्थान की ही उपज होती है। उसे बौद्धिक जिज्ञासा मात्र से प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसलिए राजेन्द्र यादव अपनी रचनाओं में संवेदनशील दृष्टि और संश्लिष्ट शिल्प का सहारा लेते हैं। उनका यह कहना है, 'मेरे पास कुछ अनुभव थे, कुछ स्थितियाँ-स्मृतियाँ थी, कहानी के माध्यम से या उन्हें लिखने की प्रक्रिया में, मैं खुद उनके अर्थ निकालना चाहता था।'<sup>121</sup> इसका अर्थ है कि रचना क्रम में वे अनुभूत से अर्थ तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। वे यह भी स्वीकार करते हैं- अपनी ही बात या अनुभव को अभिव्यक्ति देने के प्रभावशाली कोण की तलाश में ही मैंने कहानियाँ लिखी हैं।<sup>122</sup>

यही कारण है कि उनकी रचनाओं के प्रायः 'मुख्य चरित्र निरन्तर मानसिक संघर्ष में गुजरते रहते हैं-अपने में अधूरेपन का एहसास दिए हुए और निश्चिन्तता और संपूर्णता की दिशा में हाथ बढ़ाये प्रगति करते रहते हैं। यह आत्मकेन्द्रिता उनके व्यक्तित्व का भी अंग है। मन्नु भण्डारी ने शायद इसीलिए उन्हें 'डार्क रूम में बन्द आदमी' कहा है। साथ ही वे यह भी कहती हैं कि 'इनके हीन भावना ने इन्हे तोड़ा या कुंठित नहीं किया, बल्कि साधा और सांवरा है-वह इनकी सबसे बड़ी प्रेरक शक्ति रहा है।'<sup>123</sup> उनके व्यक्तित्व की यह झलक उनके पात्रों में भी मिलती है। अपनी रचना प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं, 'मुझे केवल स्थितियाँ (सिचुएशन) याद रहती हैं। उनके प्रभाव बने रहते हैं, कुछ बिम्ब मन में सुरक्षित रह जाते हैं। सारा प्रयत्न इन बिम्बों, प्रभावों स्थितियों को भाषा का आकार देने का रहता है, इसके लिए बाद में परिस्थितियाँ आती हैं, परिवेश और वार्तालाप आते हैं, पात्रों में व्यक्तित्व और स्तर आते हैं। पाठक और लेखक के बीच यह अनुभव से अनुभव तक की यात्रा है।'<sup>124</sup> रचना उनके लिए भोगे हुए विवरण का मात्र नहीं है बल्कि एक नया सृजन है तथा यह सृजन अनुभव के स्तर पर लेखक का इतना अपना हो जाता है कि उसकी हर रचना आत्मकथन बन जाती है। लेखन के विषय में अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए राजेन्द्र यादव कहते हैं, 'लिखना मेरे लिए शारीरिक और मानसिक यातना है। मैं हमेशा मन में यह विश्वास रखकर अपने से कहता हूँ कि जब चाहूँगा एक दिन जमकर बैठूँगा और चैप्टर खत्म कर डालूँगा। पहले दो-तीन पन्ने के बाद लिखना प्रायः आसान हो जाता है, लेकिन सारे दिन मानसिक तैयारी और चार-पाँच घंटों के परिश्रम के बाद चार पृष्ठ से ज्यादा कभी भी नहीं लिख पाता।'<sup>125</sup> इसी बात को वे 'शह और मात' उपन्यास की भूमिका में भी कहते हैं, 'बड़ी ही कष्टकर बेगार है लिखना...जो कुछ भी लिखा है वह किसी भी मायने में संतोषजनक नहीं। मन होता है सब फाड़-फूड़ डालूँ...लेकिन बस, यही उम्मीद है कि शायद कभी किसी अच्छे लिखने के रूप में ही आज तक का यह लिखा काम आ जाए।'<sup>126</sup>

**साहित्य सम्बन्धी अवधारणा :** राजेन्द्र यादव उन विचारकों में नहीं हैं जो साहित्य का स्वयत्त, आत्मनिर्भर एवं स्वयं में सम्पूर्ण मानते हैं। उनके अनुसार, 'हर शब्द का एक अर्थ है और व अर्थ वस्तुओं, प्रत्ययों या परम्परात संस्कारों या संस्कृति से जुड़ा है-यानी उसके आसंग और सन्दर्भ हैं जिनकी जड़ें समाज या संस्कृति में हैं-यानी वहाँ दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र, धर्म सभी कुछ है, साहित्य इन्हीं सबसे सहित है। वह समन्वित या सामंजस्य है, भारत में तो शायद ही किसी ऐसे साहित्य की कल्पना की जा सके जिसके पीछे दृष्टि, दर्शन या धर्म न हो।'<sup>127</sup> इसका सीधा सा अर्थ है कि राजेन्द्र यादव ऐसे साहित्य की परिकल्पना नहीं कर सकते जो जीवन से निरपेक्ष हो। उनके लिए यथार्थ चित्रण ही साहित्यकार

का वह परिवेश और उसकी वह परिधि है जो उसकी चेतना और दृष्टि बनती है। जीवन यथार्थ चित्रण ही साहित्य का मूल तत्त्व है। “कहानी हो या उपन्यास, रचना जब तक अपने यथार्थ की आभ्यन्तरिक आवश्यकता और वास्तविक समस्याओं के दबावों से उद्भूत होकर नहीं आती, अपनी चिन्तन प्रक्रिया और व्यक्तित्व की समग्रता की प्रतिच्छाया नहीं बन जाती, तब तक न उसमें सजीवता आ पाती है न शक्ति।”<sup>128</sup> राजेन्द्र यादव यह रेखांकित करते हैं कि यथार्थ चित्रण में चरित्र हवाई या अनदेखे नहीं होते, समस्याएँ और परिस्थितियाँ गढ़ी हुई या उधार ली हुई नहीं होतीं। रचना अपने परिवेश का वास्तविक चित्रण करती हैं। इसीलिए राजेन्द्र यादव मानते हैं “कथा साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं बैरोमीटर है।”<sup>129</sup>

राजेन्द्र यादव की मान्यता है कि जिन्दगी और समाज को नियंत्रित करने वाली एक शक्ति हर युग में कार्य करती है। आज यह शक्ति राजनीति के हाथ में है, अतः साहित्य और राजनीति का सम्बन्ध भी बहुत गहरा है। “हर समय का अपना एक मुख्य स्वर होता है। मध्यकाल का मुख्य स्वर धर्म था और बिना धर्म को समझे न उस समय के साहित्य को समझा जा सकता था न जीवन को। आज की वह केन्द्रीय शक्ति राजनीति है—बिना राजनीतिक चेतना के न आज साहित्य लिखा जा सकता है न समझा जा सकता है।”<sup>130</sup> “राजनीति लेखक की या किसी भी संवेदनशील आदमी की चेतना को धार देती है क्योंकि वह सामान्य जन से जुड़ी हुई होती है और उसका कोई भी फैसला सीधे समाज को प्रभावित करता है। इसीलिए उसमें चेतना को स्वरूप देने की शक्ति होती है।”<sup>131</sup> राजनीति आज के युग की महत्त्वपूर्ण एवं केन्द्रीय शक्ति अवश्य है किन्तु वह साहित्य पर हावी नहीं हो सकती।

“राजनीति बुद्धिजीवी और साहित्य को भ्रष्ट कर देती है और कलात्मक ऊँचाइयों को खा जाती है। इसलिए पहले ऊँचाई की कला को माँजो।”<sup>132</sup> इसका कारण यह है कि राजनीति अपने मूल स्वरूप में जोड़-तोड़ से जुड़ी हुई है तथा वह साहित्यकार की स्वतंत्रता का उपहास करती है। राजेन्द्र यादव की यह मान्यता है कि जो रचनाकार राजनीति के पिछलग्गू बन जाते हैं उनका रचनाकर्म अपना प्रभाव खो बैठता है। वे अपने विषय में इसी बात को रेखांकित करते हुए कहते हैं “जो पूरे सामान से शर्तों पर मिलेगा, वही लेना है, झूठ, धोखे, खुशामद और तिकड़म संसारी जुगाड़ करना और फिर मंच पर लेखकीय गौरव का गुणगान करना मुझे ऐसा फरेब लगता है, जिसके खिलाफ मैं ही क्या, हर लेखक लड़ता रहा है। रग-रग में फैले कैसर की तरह यही हेकड़ी लेखन और जबान में फूट पड़ती है कि हर समझौता, लेखन की धार को कुण्ठित करता है।”<sup>133</sup>

अतएव तुलसी की प्रामाणिकता या प्रासंगिकता साहित्य की शास्त्रीय महानता में नहीं, इस सही मानसिकता से जुड़े होने में है। अतः साहित्य को भी सही मानसिकता से जुड़ना होगा और उसे शास्त्र के दबाव में नहीं आना चाहिए।<sup>134</sup> इतना ही नहीं वे लेखन के समक्ष खतरों को भी अच्छी तरह पहचानते हैं, “एक रचनाकार की तरह मुझे दो भयानक खतरों को एक साथ झेलना पड़ रहा है—एक ओर पत्रकारिता तो दूसरी तरफ दूरदर्शन...डर लगता है कि ये दोनों या तो मुझे निष्क्रिय पाठक और तटस्थ दर्शक में बदल डालेंगे या माँगपूर्ति का लेखक बना कर छोड़ेंगे...मेरे सामने विकल्प यही है कि या तो किराए का लेखक बनूँ या सरकारी पुरस्कारों—सम्मानों का याचक।”<sup>135</sup> साहित्यकार को इन खतरों से भी अपने को बचाते हुए रचनाकर्म में लगे रहना है। किन्तु राजेन्द्र यादव को आज के साहित्यकारों से शिकायत भी है कि हमारे साहित्य में भी जीवन की तरह ढोंग अधिक है इसीलिए हमारे यहाँ ईमानदार व्यवहार या ईमानदार संस्मरण लिखने की परम्परा या तो है ही नहीं या बहुत ही क्षीण है। वे अपेक्षा करते हैं कि आज ऐसे साहित्यकारों की आवश्यकता है जो साहस से जीवंत ईमानदार परम्परा को

स्वीकार करें। राजेन्द्र यादव यह नहीं मानते कि साहित्य से सीधे-सीधे क्रान्तियों और परिवर्तनों का सूत्रपात नहीं होता। वैसे ही सशस्त्र क्रान्तियों अथवा राजनीतिक परिवर्तनों में से खुद-ब-खुद साहित्य नहीं उपजता। “साहित्य कभी कोई दिशा नहीं देता, कभी कोई क्रान्ति और परिवर्तन नहीं करता—वह तो औरों द्वारा किये गये विचारों और कर्मों से खुद दिशा लेता है। अपने को पैना और प्रभावशाली बनाता है और आगे जाकर अपने आपको जीवित रखता है।”<sup>136</sup> किन्तु दूसरों के विचारों को लेकर अपने को जीवित रखने के प्रयास में ही साहित्य वह जीवन दृष्टि भी देता है जो जीवन को सुन्दर बनाने में सहायक होती है। साहित्य और आधुनिकता का अन्तःसम्बन्ध करते हुए राजेन्द्र यादव मानते हैं कि युग के अनुरूप संवेदना और भावबोध ही आधुनिकता है। आज के लेखकों में भी पुराने भावबोध के लेखक हो सकते हैं और पुराने लेखकों में भी आज के भावबोध के। कई बार हमें अपने समकालीन लेखक भी पुराने लगते हैं जबकि प्रेमचन्द, यशपाल, अज्ञेय, चैखव, टॉमस, सार्त्र, कामू आदि अधिक आधुनिक लगते हैं। इसका कारण यह है कि “अपने समय, समाज और मन के वास्तविक संक्रमण के अन्वेषण की प्रक्रिया में ही हर कथाकार आधुनिक हुआ है।”<sup>137</sup>

राजेन्द्र यादव यह भी मानते हैं कि “आधुनिक एक ऐसे भावबोध और प्रक्रिया का नाम है, जिसमें निरन्तर परिवर्तन और संशोधन की गुंजाइश है।”<sup>138</sup> अतः जिन रचनाकारों ने अपनी परिस्थितियों और अनुभूतियों के बीच निरन्तर जूझते हुए आधुनिक दृष्टि विकसित करने की चेष्टा की है वे ही कालान्तर में साहित्य की मुख्य धारा का अंग बन पाते हैं। वही रचनाकार दीर्घजीवी होता है जिसका लेखन कितना ही व्यक्तिगत या सामाजिक लगता हो, उसका रचनात्मक संसार अपने युग की जलती हुई समस्याओं से ही अनुप्राणित होता है। राजेन्द्र यादव का आधुनिकता बोध अधिक तीव्र और जीवन सापेक्ष है। “व्यापक सामाजिक जागरूकता नेही यादव की रचना दृष्टि को एक प्रगतिशील स्वभाव प्रदान किया है और वह कोरी एक्सट्रैक्शन (सूक्ष्म) होकर नहीं रह गयी है। वे सामाजिक प्रश्नों और समस्याओं को किसी एक ही दृष्टि से उठाने के बजाय उसकी समग्रता और व्यापकता में उठाने के आग्रही हैं।”<sup>139</sup>

**कविता सम्बन्धी अवधारणा :** राजेन्द्र यादव मूलतः कथाकार और विचारक हैं किन्तु ‘आवाज तेरी है’ नाम से उन्होंने एक काव्य संग्रह भी प्रकाशित कराया था। तथापि राजेन्द्र यादव ने कविता के सम्बन्ध में यत्र-तत्र अपने विचार व्यक्त किये हैं। वे मानते हैं कि “कविता में काव्य अनुभूतियों का उत्स प्रमाण और संदर्भ स्वयं कवि होता है।”<sup>140</sup> अतः कवि उन्हें ही सम्पूर्ण सत्य मानकर चलता है और उनकी अभिव्यक्ति के लिए वह अप्रस्तुत बिम्बों का सहारा लेता है। अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों के लिए कवि व्यक्तिगत तर्क और कल्पना द्वारा कहीं से भी उपमा, प्रतीक, विम्ब आदि लाता है तथा उन्हें अपनी अनुभूतियों के साथ अन्तर्भुक्त करने का प्रयास करता है।

राजेन्द्र यादव के अनुसार, “कवि का कार्य, नये प्रतीक खोजने, रंगों की नयी संगतियाँ पाने और उन्हें नया अर्थ देना है।”<sup>141</sup> परन्तु बार-बार नये रंग, प्रतीकों का प्रयोग करके प्रतिभाशाली कवि अपने लिए भले ही उनके अर्थ सुनिश्चित कर ले, औरों के लिए वह रूढ़ियाँ छोड़ जाता है। “कविता प्रकृत्या आत्म सम्बोधन है।”<sup>141</sup> अतः कवि को अपने आप तथा अभिव्यक्ति के माध्यम के अतिरिक्त किसी तीसरी सत्ता (पाठक या श्रोता) के अस्तित्व से भी जूझना पड़ता है और इसीलिए कविता अमूर्तन की ओर भी बढ़ जाती है। राजेन्द्र यादव यहाँ तक मानते हैं कि “कवि पलायन की स्थिति में ही कहानी की ओर आता है, अपेक्षाकृत अधिक समर्थ और पूर्ण माध्यम और युग के यथार्थ की खोज उसे कहानी की ओर आने को मजबूर करती है।”<sup>142</sup>

राजेन्द्र यादव कहानी और कविता की मूल प्रकृति में ही अन्तर मानते हैं “जो मनःस्थिति सम्पूर्ण कविता के लिए पर्याप्त है, वह अधिक से अधिक कहानी के पूरे फ्रेम में एक स्थिर भर हो सकती है।...अनुभूति के साथ उसका परिवेश और अभिव्यक्ति के साथ उसका पाठक-कहानी-कला के तीन आयाम हैं, क्योंकि वह आत्म सम्बन्धन नहीं दूसरों के लिए सम्बन्धन है।”<sup>143</sup> अतः वहाँ प्रतीक, बिम्ब, उपमा आदि खोजने का झंझट ही नहीं है। कहानी अधिक मूर्त विधा है और उसमें तो अमूर्त भावों को मूर्त रूप देने की प्रवृत्ति है, जो कविता की प्रकृति से शायद उल्टी है।

“कहानी के दोनों ओर समाज होता है”<sup>144</sup> या यों भी कह सकते हैं कि समाज से समाज तक की यात्रा है जबकि कविता व्यक्ति मन से समाज की। कहानी की बारहखड़ी ही अधिक टोस और व्यावहारिक जीवन बिम्बों और स्थिति खण्डों से बनी है, इसलिए वहाँ सूक्ष्मता, सांकेतिकता और लाक्षणिकता चाहे जितनी आ जाए हवाईपन नहीं आ पाता, नहीं आना चाहिए।<sup>145</sup> वे अपनी धारणा की ओर भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं, “कहानी मूलतः अपनी प्रकृति में उतनी हवाई (या अमूर्त) हो ही नहीं सकती, क्योंकि उसमें लोग होते हैं, उनके सम्बन्ध और संदर्भ होते हैं, कुंठाएँ, संघर्ष और स्वप्न होते हैं। वह अनिवार्य रूप से एक सामाजिक विधा है, व्यापक और तात्त्विक होन के लिए निश्चय ही हमें अमूर्तन में जाना पड़ता है। कविता के लिए आसान है कि वह अवास्तविक में स्थापित हो जाए, मूर्त, अमूर्त में बदलती रहे, मगर कहानी के संदर्भ में आकार का यह निषेध वास्तविक या अन्ततः मनुष्य का निषेध है।”<sup>146</sup> राजेन्द्र यादव के लिए कविता की तुलना में कहानी अधिक सामाजिक विधा है।

**उपन्यास सम्बन्धी अवधारणा :** राजेन्द्र यादव स्वयं एक सफल उपन्यासकार हैं तो उपन्यास के गम्भीर अध्ययता भी। उन्होंने ‘अठारह उपन्यास’ शीर्षक से जो कृति प्रकाशित करायी उसमें उनके हिन्दी उपन्यासों पर प्रकाशित लेख संकलित हैं। ये लेख हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासों पर लिखे गये हैं किन्तु इन लेखों में राजेन्द्र की उपन्यास सम्बन्धी अवधारणाएँ भी प्रकट हो गयी हैं। उनकी ‘प्रेमचन्द की विरासत’ नामक कृति में भी कतिपय निबन्ध ऐसे हैं, जिनमें वे उपन्यास पर चर्चा करते हैं।

राजेन्द्र यादव कथा साहित्य तथा कथा समीक्षा की दुर्दशा को लेकर चिन्तित है, “मुझे अफसोस है कि भारतीय कथा साहित्य ने मूल्यों और सम्बन्धों के आधारभूत संकट को वास्तविक निगाहों से बिल्कुल नहीं देखा है, नयी स्थितियों के सामने हारते हुए पुराने को ही कथा साहित्य ने अपना केन्द्र बनाया है।”<sup>147</sup> तो दूसरी ओर वे कहते हैं “कथा समीक्षा का मानकीकरण तब तक नहीं होगा जब तक काव्य समीक्षा की तरह कुछ विधागत सैद्धान्तिक प्रश्नों या पुरानी कृतियों पर नये सिरे से विचार नहीं किया जाएगा।...परम्परा से न जुड़ने के कारण ही आज हमारे पास न तो समीक्षा की समझ का मानकीकरण है न मुहावरे का, शायद औजार तो हैं ही नहीं।”<sup>148</sup> राजेन्द्र यादव विभिन्न उपन्यासों की समीक्षा के बहाने कथा समीक्षा के नये औजारों की तलाश करने का प्रयास करते हैं। ‘चन्द्रकान्ता सन्तति’ की समीक्षा में वे इस सन्दर्भ में कुछ प्रश्न उठाते हैं “क्या रचना का अपने समय और समाज या लेखक से कोई रिश्ता नहीं होता? या कहें लेखक की अपनी घोषित मान्यताओं, मंतव्यों और स्वार्थों-संस्कारों के बावजूद क्या उसकी रचना प्रक्रिया में समय कहीं भी प्रवेश नहीं कर पाता?”<sup>149</sup> यहाँ राजेन्द्र यादव यह रेखांकित करना चाहते हैं कि उपन्यास की समीक्षा करते समय यह देखा जाना जरूरी है कि वह उपन्यास अपने समय को किस प्रकार समाहित करता है। ‘चन्द्रकान्ता सन्तति’ में राजेन्द्र यादव पाते हैं कि “खत्रीजी के पहले या उनके समकालीन उपन्यासकारों का एकमात्र सरोकार था-पूर्वी तथा पश्चिमी सभ्यता का संघर्ष।”<sup>150</sup>

किन्तु समय से राजेन्द्र यादव का तात्पर्य केवल एक कालखण्ड विशेष के चित्रण मात्र से ही नहीं है। ‘बूँद और समुद्र’ उपन्यास की समीक्षा करते समय वे अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं “शायद सफल उपन्यासकार का सबसे बड़ा गुण भी यही हो सकता है कि वह वर्तमान को ऐसा सटीक बना दे कि ऐतिहासिक महत्त्व की चीज हो जाए और इतिहास को ऐसा सजीव बना दे कि वह वर्तमान जैसा लगे।”<sup>151</sup> वे आगे कहते हैं “उपन्यास का काल क्षेत्र कोई भी हो, सचेत उपन्यासकार कभी भी आज को नहीं भुला पाता, तब उसका अर्थ यह भी हो कि वह हर आज को आने वाले कल की दृष्टि से देखता है-देखे, तभी वह अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्व की गरिमा का निर्वाह कर पाएगा।”<sup>152</sup> इसी क्रम में वे ऐतिहासिक उपन्यास के लिए भी आवश्यक मानते हैं कि वह “वर्तमान समस्याओं के हल या दिशा संकेत दे सकते हैं।”<sup>153</sup>

यह सब तभी सम्भव होगा जब उपन्यास की दृष्टि भूत भविष्य तथा वर्तमान तीनों कालों पर रहे। अतः राजेन्द्र यादव मानते हैं कि “उपन्यासकार एक आदर्श नागरिक हो या न हो (और प्रायः नहीं ही होता) लेकिन आज के जमाने में उसे सचेत नागरिक तो होना ही पड़ता है।”<sup>154</sup> सचेत नागरिक से उनका तात्पर्य यह है कि उपन्यासकार अपने काल में घटित होने वाली घटनाओं को ठण्डी होने की प्रतीक्षा करे तथा उनसे सम्बन्धित तथ्यों को अधिकाधिक वास्तविक रूप में प्राप्त कर ले। इस प्रतीक्षा से अनुभूति की गहराई में तीव्रता आती है और “शायद उपन्यास में या किसी भी कृति में रोचकता और रस भी आवेग की गहराई और अनुभूति की तीव्रता से ही आते हैं।”<sup>155</sup> इसका तात्पर्य यह है कि राजेन्द्र यादव उपन्यास में रोचकता और रस को आवश्यक मानते हैं जो आवेग की गहराई और अनुभूति की तीव्रता से ही आते हैं।

राजेन्द्र यादव की मान्यता है कि “केवल भाषा का (शैली का नहीं) चमत्कार और गद्य काव्य के टुकड़े ही उपन्यास नहीं बनते।”<sup>156</sup> इस संदर्भ में वे यशपाल की प्रशंसा करते हुए कहते हैं, “उपन्यासकार की सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति और गहरी संवेदना जैसे पुकार-पुकार कर घोषणा करती है। यह शक्ति प्रेमचन्द और वृन्दावनलाल वर्मा में भी थी।”<sup>157</sup> इस सूक्ष्म पर्यवेक्षण के लिए लेखक को स्वाभाविक जीवन की वास्तविकताओं के पास जाना पड़ता है जिसके चित्रण से ही कोई कृति महत्त्वपूर्ण बन पाती है, “आखिर जिन्दगी और स्वाभाविकता भी तो कुछ है, जहाँ से सारे उपन्यास, कहानियों के पात्र आते हैं।”<sup>158</sup> ये तत्त्व ही उपन्यास को गरिमा प्रदान करते हैं। यहाँ राजेन्द्र यादव का दृष्टिकोण फॉक्स के दृष्टिकोण से मिलता-जुलता है, “संसार का देखने और जीवने को देखने के दृष्टिकोण के अभाव में ऐसे व्यक्तित्व की पूर्ण और स्वतंत्र अभिव्यक्ति जरा भी सम्भव नहीं है। सच बात तो यह है कि सही दृष्टिकोण के बिना आज का उपन्यासकार न तो नये जीवन को पा सकता है-और न मानवता का ही उत्थान कर सकता है।”<sup>159</sup> अपनी धारणा को राजेन्द्र यादव ‘बूँद और समुद्र’ उपन्यास के संदर्भ में स्पष्ट करते हैं, “व्यक्ति को समाज के संदर्भ और परिपार्श्व में समझने और इस सारे समाज के विस्तृत विशद विहंगावलोकन के परिणामस्वरूप व्यक्तित्व को सामाजिक परिभाषा देने की दिशा में ‘बूँद और समुद्र’ अकेला है।”<sup>160</sup>

राजेन्द्र यादव की यह भी मान्यता है कि श्रेष्ठ उपन्यासकार बड़ी सफलता से अपने आपको उपन्यास के पात्रों से अलग करता है। धर्मवीर भारती के ‘सूरज का सातवाँ घोड़ा’ उपन्यास पर लिखते हुए वे कहते हैं, “इस उपन्यास में धर्मवीर भारती की सबसे बड़ी सफलता ही यह है कि उन्होंने अपने आपको बड़ी कुशलता से माणिक मुक्ता से अलग किया है। अतः वे अपनी कहानियों में एक अत्यन्त सफल कलाकार की तरह तटस्थ और अनासक्त रह सके हैं।”<sup>161</sup> राजेन्द्र यादव श्रेष्ठ रचना के लिए जीवन के प्रति गहरी सम्पृक्ति आवश्यक मानते

हैं तथा अभिव्यक्ति के स्तर पर कथ्य के साथ भाषा और शिल्प का सन्तुलन जरूरी मानते हैं। गिरीश अस्थाना के 'धूप छाँही रंग' उपन्यास पर लिखते हुए वे अपना मन्तव्य प्रकट करते हैं "गहरी सम्पृक्ति और यातना के साथ भाषा और शिल्प के सन्तुलित अधिकार के बिना इनकी रचना शायद सम्भव नहीं थी।"<sup>62</sup> राजेन्द्र यादव यह भी मानते हैं कि "उपन्यास को सार्थकता वही लेखक दे पाएगा जो सचमुच आज के मनुष्य की यातना से विगलित व्यथित होगा और निर्भीक पत्रकार की उपलब्धियों को अपने भीतर समाहित करेगा।"<sup>63</sup> साथ ही वे लेखन को एक निजी कर्म मानते हैं तो उनकी दृष्टि में "मेरे लिए उपन्यास एक प्रबुद्ध व्यक्ति के आत्मन्वेषण की सफल या असफल प्रक्रिया है।"<sup>64</sup> राजेन्द्र यादव उपन्यास को आज के साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण विधा मानते हैं। तभी वे कहते हैं "उपन्यास का इस तरह केन्द्र में आना मुझे एक नये सांस्कृतिक आन्दोलन का प्रारम्भ लगता है...इस शताब्दी की उपन्यास यात्रा डिबेट (जिरह) से लेकर डिस-इल्यूजनमेन्ट (मोहभंग) तक रही है। यानी सारे मूल्यों, आदर्शों के प्रति अस्वीकृति तक।"<sup>65</sup> इतना ही नहीं वे यह भी मानते हैं "उपन्यास एक लोकतांत्रिक विधा है। सही है कि उसकी अवधारणा और प्रत्यय हमने पश्चिम से लिए हैं मगर रेल और बिजली की तरह वह हमारे जीवन का अनिवार्य हिस्सा है। उपन्यास की समीक्षा सिर्फ शब्द, प्रतीक, बिम्ब, भाषा, टैकनीक जैसे उपकरणों के आधार पर ही नहीं हो सकती। पिछले वर्ष अनेक विमर्शों के दौरान उपन्यास को यथार्थवाद, समय, इतिहास, संस्कृति, संघर्षों के संदर्भों में ही देखने का आग्रह अधिक रहा है।"<sup>66</sup> राजेन्द्र यादव उपन्यास विधा के विकास को लोकतंत्र के विकास के साथ जोड़कर देखते हैं तथा इस विधा को जनसंघर्ष का अंग ही मानते हैं।

उपन्यास विधा की महत्ता को प्रतिपादित करने की दृष्टि से राजेन्द्र यादव ने 'हंस' का जनवरी, 1999 अंक 'हिन्दी उपन्यास : एक सदी' शीर्षक विशेषांक अग्रणी कथाकार पंकज बिष्ट से सम्पादित कराया है, जिसके सम्पादकीय में पंकज बिष्ट लिखते हैं, "हिन्दी उपन्यास मात्र सौ साल के करीब पुराना है पर इसकी उपलब्धियाँ चकित करने वाली हैं। इसके बावजूद हिन्दी में उपन्यास को कभी भी उतना महत्त्व नहीं दिया गया, जितना कि चाहिए था।"<sup>67</sup> इस अंक में राजेन्द्र यादव नेपथ्य में रहे हैं पर उपन्यास को आज की केन्द्रीय विधा के रूप में स्थापित कराने का प्रयास यहाँ स्पष्ट दिखायी देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि राजेन्द्र यादव यह सब योजनाबद्ध तरीके से कर रहे हैं, क्योंकि उन्होंने 'हंस' के जुलाई, 1998 तथा अगस्त, 1998 अंकों के सम्पादकीय भी 'सदी का औपन्यासिक अन्त' शीर्षक से लिखे थे, जिनमें भी उन्होंने हिन्दी के उपन्यासों पर अपने मौलिक तथा गम्भीर विचार व्यक्त किये थे। इन दोनों आलेखों में भी राजेन्द्र यादव ने उपन्यास सम्बन्धी अपनी स्थापनाएँ दी हैं, जिनमें प्रमुख हैं—हिन्दी उपन्यास स्त्री चेतना के आर्थिक, सामाजिक, और कानूनी आयामों की नयी दृष्टि से पड़ताल कर रहा है। इसलिए "स्त्री चेतना का यह नया रूप शहरों से अत्यंत परिचित या पुनरावृत्ति के उबाऊ शहरों से हटकर गाँवों कस्बों में अधिक जुझारू ढंग से उभर कर आ रहा है।"<sup>68</sup> अपनी अवधारणा को वे अलका सरावगी (कलिकथा : वाया बाईपास), मैत्रेयी पुष्पा (चाक) आदि के उपन्यास के उदाहरणों से पुष्ट करते हैं। राजेन्द्र यादव की यह भी स्थापना है कि हिन्दी उपन्यास आज सामाजिक हस्तक्षेप करने की स्थिति में आ गया है। "आज हाशिए के लोगों का सामाजिक हस्तक्षेप भले ही खुलकर दिखायी दे रहा हो मगर साहित्य में उसकी शुरुआत सदियों पहले हो चुकी थी। विशेषकर नारी लेखन और अल्पसंख्यकों की। शानो का 'काला जल' राही मासूम रजा का 'आधा गाँव' आज हिन्दी की क्लासिक रचनाएँ हैं। इधर तो असगर वजाहत, मंजूर एहते-शाम, अब्दुल

बिस्मिल्लाह, मुशर्रफ आलम जौकी जैसे न जाने कितने कथाकार हैं जो अपनी बात अपने ढंग से कह रहे हैं।"<sup>69</sup> राजेन्द्र यादव यह भी रेखांकित करना चाहते हैं कि हिन्दी उपन्यास भारत में फैली साम्प्रदायिकता के विरुद्ध सार्थक हस्तक्षेप कर रहा है।

राजेन्द्र यादव की स्थापना है कि स्त्री चेतना तथा अल्पसंख्यक चेतना के साथ हिन्दी उपन्यास के साथ दलित चेतना भी गहराई से जुड़ी है। यद्यपि दलित चेतना का सूत्रपात हमें प्रेमचन्द (कफन, ठाकुर का कुआँ आदि), अमृतलाल नागर (नाच्यौ बहुत गोपाल), जगदीश चन्द्र (धरती धन न अपना, नरक कुण्ड का वास), गिरिराज किशोर (परिशिष्ट, यथा प्रस्तावित) आदि में मिलता है, किन्तु इधर दलित रचनाकारों का उपन्यास लेखन क्षेत्र में आगमन एक शुभ लक्षण है। दलित लेखकों ने अपनी आत्मकथाओं द्वारा इस ओर कदम बढ़ाए हैं। इन्हीं आलेखों में राजेन्द्र यादव ने हिन्दी के कालजयी उपन्यासों की चर्चा भी की है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि राजेन्द्र यादव उपन्यास को जीवन की वास्तविकताओं का सजीव चित्रण मानते हैं, जिनमें कथ्य, भाषा तथा शिल्प का समन्वय करना उपन्यासकार का कर्तव्य है।

**लेखक तथा लेखन सम्बन्धी अवधारणा :** राजेन्द्र यादव ने स्वतंत्र लेखन को ही अपने जीवन में आजीविका के साधन के रूप में स्वीकार किया है, अतः वे लेखक के सम्मान की रक्षा के प्रति बहुत सजग हैं। वे कहते हैं, "मैं लम्बे अरसे तक स्वतंत्र लेखन करता रहा हूँ और मेरी हमेशा ही सम्पादकों से माँग रही है कि लेखकों को सम्मानजनक और सही पारिश्रमिक दिया जाए ताकि उसे हैक (भाड़े का) लेखन न करना पड़े। निश्चय ही लेखक कलम का मजदूर है लेकिन किराये की मजदूरी वह मजबूरी में ही करता है।...सिर्फ लेखन पर रह सकना लेखक के आत्म-सम्मान और परिणामतः स्वतंत्र सोच को धार देता है। मौलिक और व्यापक रचनात्मकता को बल देता है।"<sup>70</sup>

राजेन्द्र यादव सामाजिक बदलाव में लेखक की भागीदारी आवश्यक मानते हैं। उनके अनुसार लेखक यथास्थितिवादी व्यावस्था को अपने प्रहार का लक्ष्य बनाता है, "यथास्थितिवाद या स्थापित व्यवस्था को कोई भी साहित्यकार या रचनाकार प्रायः केवल इन्हीं तीन स्तरों पर झकझोर पाता है, यानी उसके लिए आपत्तिजनक होता है—एक है मैटाफिजिकल और धार्मिक, दूसरा राजनीतिक और तीसरा नैतिक। यह भी कहा जा सकता है कि सांस्कृतिक विद्रोह की यही अनिवार्य शर्त भी है कि उसने जिन्दगी के इन तीनों स्थापित मूल्यों या आदर्शों के सामने कहाँ-कहाँ नये प्रश्नचिह्न लगाये हैं। घुटती और घोटती मान्यताओं को तोड़ने या बदलने की अनिवार्य तड़प को रेखांकित किया है।"<sup>71</sup> इस दृष्टि से वे यशपाल को एक सफल लेखक मानते हैं, क्योंकि यशपाल ने व्यापक दृष्टि और गहराई से समाज की इस त्रिआयामी सच्चाई को समझा है। यशपाल राजनीतिक रूप से विद्रोही धार्मिक रूप से नास्तिक और नैतिक रूप से अश्लील होने की प्रशस्तियाँ और भर्त्सनाएँ पाते रहे हैं।

किन्तु राजेन्द्र यादव यह भी मानते हैं कि लेखक परिवर्तनों को "समाज या व्यवस्था के अमूर्तन में नहीं, मूलतः व्यक्ति की चेतना और मानसिकता में पढ़ता है क्योंकि अपने अनजाने ही धर्म, राजनीति और नैतिकता की घुटन के दबाव सबसे पहले व्यक्ति ही अपनी संवेदना में वहन करता है, वह इनके खिलाफ आवाज उठा सकता है, इनकी घुटन में टूटकर बिखर सकता है या हाताश होकर अपराध बोध के चलते हत्या-आत्महत्या कर सकता है। व्यक्तिगत कुंठाएँ ही आगे चलकर सामाजिक परिवर्तन की माँग करती हैं।"<sup>72</sup> किन्तु राजेन्द्र यादव लेखक के व्यापक स्वरूप पर भी विचार करते हैं, "लेखक दो तरह के होते हैं—एक जिन्हें हम पेंशन या आवेगों के लेखक कहते हैं, जैसे बाल्जाक, दास्तायव्स्की,

काफ़ी, हैमिंग्वे, मण्टो, ये लेखक हमें बेचैन करते हैं, उद्विग्न और प्रश्नाकुल बनाते हैं, कौंचते और सवाल उठाते हैं। ये यथास्थितियों को तोड़ते हैं और उसमें दरारें पैदा करते हैं ताकि हम भविष्य को देख सकें या कम से कम जो जैसा है, उसमें घुटन महसूस कर सकें। दूसरे तरह के लेखक कम्पेशन के लेखक हैं। वे संवेगों से अधिक संवेदना और वेदना के लेखक हैं, करुणा और क्षमा के लेखक हैं—तुर्गनिव, तोल्सतोय, चैखव, ह्यूगो किसी हद तक रवीन्द्रनाथ इसी तरह के लेखक हैं।<sup>173</sup> राजेन्द्र यादव उन्हीं लेखकों को महान मानते हैं जो अपने लेखन को मानव स्थिति से जोड़ते हैं। राजेन्द्र यादव भाषाविद् नहीं हैं, किन्तु वे रचना में भाषा प्रयोग के सम्बन्ध में अपनी अलग धारणा रखते हैं। उनकी मान्यता है कि “एक भाषा साहित्य की रचना की होती है, एक पत्रकारिता की भाषा होती है, एक राजकाज की भाषा होती है और भाषा का चौथा स्तर बोलचाल की भाषा का होता है।”<sup>174</sup> उनकी दृष्टि में भाषा अपने आप में कोई चीज नहीं है, भाषा उन लोगों की मानसिकता स्पष्ट करती है, जिनका वह प्रतिनिधित्व कर रही होती है।<sup>175</sup> किन्तु राजेन्द्र प्रसाद यादव का मुख्य सरोकार वह भाषा है, जो रचनाओं में प्रयुक्त होती है। वे हिन्दी साहित्यकी ऊर्जा का केन्द्र ही हिन्दी की लोकतांत्रिक परम्परा को मानते हैं, जिसका आधार लोकभाषा है। “हिन्दी की लाख कमजोरियों, कमियों और कमीनगियों के बावजूद एक विशेषता जरूर ऐसी है जिस पर हमें गर्व होना चाहिए और वह है लोकतांत्रिक परम्परा। यहाँ टिका वही है जिसके अपने साहित्य में ऊर्जा और दम हुआ है।”<sup>176</sup>

यहाँ वे भाषा के शैली-अशैली प्रयोग पर भी विचार करते हैं तथा रचनाओं में गालियों के प्रयोग पर अपना मन्तव्य देते हैं। “गाली अगर हमारी भाषा में आ रही है तो हम उससे बच कैसे सकते हैं? माँ बहनों का अपने परिवार का नाम लेकर, हम छुपे शब्दों में गाली का देखकर भड़कते हैं।”<sup>177</sup> जबकि घर के बाहर उन्हीं गालियों को सुनते रहते हैं। राजेन्द्र यादव की मान्यता है कि हमने व्यर्थ में ही यह मान लिया है कि कुछ शब्द मुद्रणीय नहीं हैं। राजेन्द्र यादव रचनाओं में बोल-चाल की भाषा के प्रयोग को उचित मानते हुए कहते हैं, “आज

साहित्य हमारे हाथ में है और हम साहित्य के कला मूल्यों, सौन्दर्यशास्त्र, भाषा की नफासत और लताफत को लेकर बहुत चौकन्ने, चौकस हैं। हम करुणाई होकर उन करोड़ों वंचित और प्रवंचित लोगों की कहानियाँ बेहद ईमानदार सरोकार और प्रतिबद्धता से लिखेंगे, लेकिन उन्हें बोलने की आजादी देंगे सिर्फ अपनी शर्तों पर यानी हमारी अपनी भाषा में। क्यों? क्यों हम ही अपनी भाषा उनके मुँह में रखने के बाजिद हैं?”<sup>178</sup>

राजेन्द्र यादव यह मानते हैं कि हम लोकभाषा से ही अपने लिए नये-नये मुहावरे तलाश करते हैं। वे मानते हैं कि जागरूकता और सामाजिक चेतना का माध्यम लोकसभा ही बनती है, “सवाल एक निरन्तर बढ़ती चेतना और उससे पैदा होने वाली स्थिति का है। फैलती हुई लोकतांत्रिक जागरूकता, नागरिक अधिकारों, अभिव्यक्ति स्वतंत्रता से प्रेरित लोकभाषाएँ, जनबोलियाँ, मुहावरे और गालियाँ—हमारी नकली, किताबी, झाड़ंगरूमी शिष्ट भाषा के सम्पर्क में आयेगी (या वह घुसपैट करेगी) तो हमारा रवैया उनके लिए क्या होगा? क्या हम उन छलनियों को भी कभी जाँचेंगे, जिनसे छान-फटक कर हम गंवारू भाषा और मुहावरों में से कुछ को अपने लिए स्वीकार्य बनाते हैं।”<sup>179</sup>

**निष्कर्ष:** आलोचक के रूप में राजेन्द्र यादव कला तथा साहित्य के अनेक प्रश्नों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते हैं। कला जीवन निरपेक्ष होती है तथा उसके मानदण्ड भी जीवन के समानान्तर चलते हैं। रचनाकार की रचना प्रक्रिया पर लेखक के व्यक्तित्व एवं उसकी मानसिक बुनावट का गहरा प्रभाव पड़ता है। वे व्यक्ति और परिवेश की संवेदना में रचना के सूत्र खोजते हैं। वे साहित्य को अमूर्त प्रत्यय नहीं मानते बल्कि उसकी जड़ें जीवन के स्पन्दन में मानते हैं। उनकी दृष्टि में कहानी की तुलना में कविता एक अमूर्त विधा है जबकि कहानी तथा उपन्यास जीवन से आँख मूँदकर नहीं चल सकते। उपन्यास यथार्थ जीवन का चित्र होता है तथा लेखक अपने जीवनानुभवों को ही उपन्यास में अभिव्यक्त करता है। अभिव्यक्ति के लिए वह लोकभाषा का रचनात्मक प्रयोग कर सकता है। अशैलीला भाषा में नहीं हमारी मानसिकता में होती है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ

1. कहानी का उपक्रम और आलोचना का संसार : अशोक वाजपेयी, हंस, फरवरी, 92 पृ. 18 2. नये कहानी के कहानीकारों की आलोचना दृष्टि : डॉ. उषा चौहान, पृ. 118-119 3. एक दुनिया समानान्तर, यह संकलन, पृ. 8 4. एक दुनिया समानान्तर, भूमिका, पृ. 17 5. एक दुनिया समानान्तर, यह संकलन, पृ. 8 6. नये कहानी के कहानीकारों की आलोचना दृष्टि : डॉ. उषा चौहान, पृ. 120-21 7. एक दुनिया समानान्तर, भूमिका, पृ. 24 8. श्रेष्ठ कहानियाँ (प्रमुख स्वर) पृ. 6 9. नये कहानी के कहानीकारों की आलोचना दृष्टि : डॉ. उषा चौहान, पृ. 121 10. ढोल और अन्य कहानियाँ (दृष्टिकोण) 11. कहानी : स्वरूप और संवेदना, पृ. 72 12. कहानी : स्वरूप और संवेदना, पृ. 221 13. नयी कहानी के कहानीकारों की आलोचना दृष्टि : डॉ. उषा चौहान, पृ. 122 14. प्रेमचन्द की विरासत, पृ. 100 15. नयी कहानी के कहानीकारों की आलोचना दृष्टि : डॉ. उषा चौहान, पृ. 123 16. औरों के बहाने, पृ. 132-133 17. कहानी : स्वरूप और संवेदना, पृ. 98 18. खेल-खिलौने, भूमिका, पृ. 5 19. औरों के बहाने, पृ. 141 20. हंस, मई-जून 90 पृ. 56 21. मेरी प्रिय कहानियाँ, (भूमिका) पृ. 5 22. आजकल, जनवरी 1980, आज की कहानी : राजेन्द्र यादव, पृ. 29 23. मेरी प्रिय कहानियाँ, भूमिका पृ. 8 24. हंस, मई-जून 1990 पृ. 56 25. नयी कहानी के कहानीकारों की आलोचना दृष्टि : डॉ. उषा चौहान, पृ. 126 26. औरों के बहाने, पृ. 145 27. औरों के बहाने, पृ. 148 28. कहानी : स्वरूप और संवेदना, पृ. 112 29. एक इंच मुस्कान (अपना-अपना वक्तव्य), पृ. 337 30. शह और मात (भूमिका), पृ. 13 31. हंस, दिसम्बर, 1991 पृ. 5 32. कहानी : स्वरूप और संवेदना, पृ. 141 33. वही, पृ. 142 34. प्रेमचन्द की विरासत, पृ. 22 35. आजकल, सितम्बर, 1977 पृ. 5 36. प्रेमचन्द की विरासत, पृ. 36 37. हंस, मई-जून 1990 पृ. 57 38. नयी कहानी के कहानीकारों की आलोचना दृष्टि : डॉ. उषा चौहान, पृ. 129 39. इन्द्र प्रस्थ भारती, जुलाई-सितम्बर 1991 पृ. 6 40. शह और मात (भूमिका), पृ. 13 41. कहानी : स्वरूप और संवेदना, पृ. 52 42. वही, पृ. 50 43. नयी कहानी के कहानीकारों की आलोचना दृष्टि : डॉ. उषा चौहान, पृ. 131 44. एक दुनिया : समानान्तर (भूमिका), पृ. 45 45. एक दुनिया : समानान्तर, पृ. 46 46. वही, पृ. 46 47. वही, पृ. 47 48. एक दुनिया : समानान्तर, पृ. 48 49. वही, पृ. 49 50. वही, पृ. 45 51. हंस, फरवरी, 1992 पृ. 5-6 52. प्रेमचन्द की विरासत, पृ. 10 53. अठारह उपन्यास : औजारों की तलाश, पृ. 14 54. वही, पृ. 46 55. वही, पृ. 23 56. वही, पृ. 49 57. अठारह उपन्यास, पृ. 67 58. वही, पृ. 66 59. वही, पृ. 66 60. वही, पृ. 67 61. वही, पृ. 66 62. अठारह उपन्यास, पृ. 81 63. वही, पृ. 80 64. वही, पृ. 86 65. नाविल एण्ड पीपुल-फॉक्स, पृ. 208 66. अठारह उपन्यास, पृ. 79 67. अठारह उपन्यास, पृ. 110 68. वही, पृ. 150 69. प्रेमचन्द की विरासत, पृ. 114 70. एक इंच मुस्कान, पृ. 341 71. राजेन्द्र यादव -सत्ता समीकरणों के सांस्कृतिक रक्षा कवच (सम्पादकीय), हंस, फरवरी, 1999 पृ. 7-8 72. वही, पृ. 8 73. पंकज विष्ट-सहस्राब्दि के द्वारा पर, हंस, जनवरी, 1999 पृ. 5 74. राजेन्द्र यादव -सदी का औपन्यासिक अन्त-I, हंस, जुलाई, 1998 पृ. 8 75. राजेन्द्र यादव -सदी का औपन्यासिक अन्त-II, हंस, जुलाई, 1998 पृ. 4 76. हंस, सितम्बर, 1987, पृ. 5 77. हंस, फरवरी, 1991, पृ. 4 78. हंस, फरवरी, 1991, पृ. 5 79. हंस, अप्रैल, 1987, पृ. 97